प्रस्तावना

"शनैः पन्था शनैः कन्था शनैः पर्वतलङ्घनम्।
शनैः विद्या शनैः वित्तं पञ्चैतानि शनैः शनैः।।"

उपर्युक्त श्लोक को चरितार्थ करते हुए यथाशक्ति परिश्रम करके आज मैं अपने शोधकार्य की पूर्णाहुति के समीप आ पहुँची हूँ। अगाध महासागर को पार करके किनारे पर खड़ा जहाज का कप्तान जैसे समुद्र की ओर देखता है और गर्व का अनुभव करता है, वैसे आज मैं भी अपने शोधकार्य की कलावधि पर दृष्टिपात कर रहीं हूँ। जैसे जहाज का कप्तान अपने सफर के शुरूआती दौर में आए तूफानों को याद करके मुस्कराता है, उसी तरह मैं भी मुस्करा रहीं हूँ, भावस्पन्दन अनुभव कर रही हूँ।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ बुनियादी तत्व होते हैं। समय-समय पर वह अपने विचार एवं तत्वों को अपने आप परिवर्तित करता है। शैशवकाल से मनुष्य में इन तत्वों का संचय परिवार, समाज एवं उसके आसपास के वातावरण से होता है। इन तत्वों के आधार पर ही व्यक्ति अपना अस्तित्व बनाये रखता है। जिस समय व्यक्ति मे इन बुनियादी तत्वों का नाश होता है, वह जीवित होते हुए भी मृत सा हो जाता है। जीवन बहते नीर की तरह होता है। अगर बहते पानी को किसी पात्र में एकत्रित करके रखा जाए तो कुछ दिन बाद उसमें से बदबू आने लगती है, उसी तरह मनुष्य का जीवन अगर गतिमय न हो तो वह निरर्थक माना जाता है। मनुष्य के जीवन को बनाने तथा उसे एक आदर्श मनुष्य बनाने का कार्य शिक्षा करती है। शिक्षा मनुष्य को निरन्तर चलना सिखाती है। विद्या या ज्ञान ही एक ऐसी चीज है जो बांटने से बढ़ती है। इसीलिए वैदिककाल से भारतीय संस्कृति एवं साहित्य, ज्ञानमयी पुस्तकों के भंडार से भरा हुआ है। ज्ञान ही एक ऐसी शक्ति है जो एक डाकू को 'वाल्मीकि' बना सकती है और उससे 'रामायण' जैसी कालजयी कृति की रचना हो सकती है।

"अपूर्व कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारती।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात्।।"

क्षर और अक्षर में यही तो अन्तर है कि एक बॉटने से घटता है तो दूसरा बांटने से बढ़ता है। एक स्थानांतरित होता है तो दूसरा विस्तृत होता है। एक भोग लाता है, तो दूसरा योग और मुक्ति। 'सा विद्या या विमुक्तये।'

मेरा पारिवारिक माहौल शिक्षण से जुड़ा हुआ है, अत: बचपन से ही मेरी एक शिक्षक बनने की तमन्ना थी। मेरे पिता (विजयकुमार रसिकलाल शाह) हायर सेकेन्डरी स्कूल में विज्ञान एवं गणित के शिक्षक थे और मेरी माता (जयप्रभा- बहन विजयकुमार शाह) भी एक सेकेन्डरी स्कूल में गणित एवं समाजशास्त्र की शिक्षिका एवं आचार्या थी। मेरा लालन-पालन उन्होंने अपनी शैक्षणिक जिम्मेदारियों को बखूबी निभाते हुए किया। स्कूल में जब कोई विद्यार्थी या उनके माता-पिता मेरे माता-पिता का आदर सम्मान करते थे तो मुझे बड़े गर्व का अनुभव होता था। स्कूल में मेरे माता-पिता हमेशा मेरे गुरू बन जाते थे और कभी भी मेरी गलती पर मुझे डॉटने से न कतराते थे। एक शिक्षक के उत्तरदायित्व को मैं अपने घर में बचपन से ही अनुभव करती थी। मेरी माता सुबह घर का सारा काम करके हमें तैयार करके स्कूल जाती, जिसमें मेरे पिता उनकी यथायोग्य सहायता भी करते थे। अत: मैं कह सकती हूँ कि बचपन से ही मेरे मन में एक शिक्षक बनने की तमन्ना रही है। बचपन में मैं अपने मित्रों के साथ शिक्षक-शिक्षक के खेल खेला करती थी। जिसमें हम सारे मित्र शिक्षक बनकर एक दूसरे को पढ़ाते थे। बड़े होने पर अपने उस सपने को साकार करने के लिए मैंने विनयन प्रवाह (आटर्स) में अभ्यास करने का निर्णय लिया।

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय का नाम तो मैंने पहले से बहुत सुना था और वहीं पर पढ़ाई करने का मेरा सपना भी था। ईश्वर की कृपा से बिना किसी परेशानी के मुझे प्रवेश भी मिल गया। लेकिन समस्या थी विषय चयन की। इस मोबाइल युग में लोगों की लाइफ बहुत फास्ट हो गई है, हमारी मानसिकता कुछ ऐसी बन गई है कि हमें जल्द से जल्द परिणाम चाहिए। ऐसे समय में आटर्स का चयन सबको अवास्तविक सा लगा और उसमें भी साहित्य का चयन ? किन्तु शिक्षक माता-पिता की सन्तान होने के कारण घर में हमेशा मैंने पढ़ाई का माहौल पाया था। स्कूल-की छुट्टियों के दौरान मेरा समय प्राय: साहित्य वाचन में गुजरता। अत: उसी अध्यवसाय को आगे बढ़ाने हेतु मैंने हिन्दी भाषा साहित्य को मुख्य विषय के रूप में चुना। मुझे अनुमान था कि यह राह इतनी आसान और सहज नहीं हैं। लेकिन मैंने ठान लिया था कि मैं अपना पूरा जीवन सरस्वती की सेवा में ही लगाऊँगी। यही कारण था कि मुझे अपना अभ्यास और शोधकार्य कभी भाररूप नहीं लगा।

मैने हिन्दी मुख्य विषय के साथ महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। एम. ए. करने के दौरान मेरी तीव्र इच्छा थी कि मैं पी.एच.डी. करूँगी। इसी इच्छा के तहत मैने अपने गुरू डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय सर से बात की और उन्होंने मुझे पूरा आश्वासन भी दिया। एम.ए. में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने के बाद मुझे मेरे परिवारजन और डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय सर के कहने पर मैंने बी.

एड किया। बी.एड. में भी मैं प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुई। बस अब क्या था मुझे अपने सपने को साकार करने के लिए केवल मेरे परिवारजनों की अनुमति ही चाहिए थी। डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय सर उसी समय व्याख्याता बने थे इसलिए उनके प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में मैं पी.एच.डी. नहीं कर सकती थी। इसलिए मैं थोड़ी निराश भी हुई, पर मेरी यह निराशा क्षणिक साबित हुई। डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय सर के सुझाव पर मैंने डॉ. लता सुमन्त मेडम के सामने अपनी पी.एच.डी. करने की इच्छा प्रकट की। हलॉकि मैं लता सुमन्त मेडम को पहले से ही जानती थी। वह मुझे बी.ए. में भी पढ़ाती थी। उनके बारे में जितना कहा जाए उतना ही कम है। वे एक सहजता, आदर्श एवं सादगी की मूर्ति हैं। उनके अन्दर ज्ञान एवं ममत्व का असीम समुद्र समाया हुआ है। उन्होंने मेरी इच्छा को सहर्ष स्वीकारा तथा जल्द से जल्द पञ्जीकरण करवाने का आश्वासन भी दिया।

प्रारंभ से ही मेरी रुचि भारतीय इतिहास एवं ऐतिहासिक घटनाओं पर अधिक रही है। ऐतिहासिक घटनाओं का प्रभाव साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है। इसलिए डॉ. सुमन्त मेडम और डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय सर ने आपसी परामर्श से मेरी पी.एच.डी. का अध्ययन मेरी रुचि को ध्यान में रखते हुए 'नवजागरण काल' रखा। नवजागरण काल एक ऐसा काल है जहॉ से हमारे देश की रूढ़िगत मान्यताओं का खण्डन प्रारंभ होता है। इस काल के प्रवर्तक राजाराम मोहनराय माने जाते हैं क्योंकि उन्होंने ही सन् 1829 में लार्ड विलियम बैन्टिक की मदद से सती प्रथा जैसी कुरीतियों पर प्रतिबन्ध लगाया था। नवजागरण काल के विषय में मुझे हिन्दी साहित्य के इतिहास एवं हिन्दी साहित्य में उसके ऊपर किया गया काम स्पष्ट रूप से न मिला। तब मैंने भारतीय इतिहास की पुस्तकों का चयन किया। शुरुआती दौर में मुझे काफी दिक्कतें आई जैसे कौन सी पुस्तक में से मुझे नवजागरणकाल की जानकारी मेरी संतुष्टि के अनुसार मिलेगी इसके लिए मैंने हंसा मेहता लाइब्रेरी एवं आई.ए.एस. की परीक्षा की तैयारी कर रहे मेरे कुछ मित्रों की मदद ली। जिनकी मदद से भारतीय इतिहास पर आधारित कई पुस्तकों का चयन किया। पुस्तकों के चयन से मुझे 'नवजागरण काल' जो 1857 ई.स. के बाद माना जाता है, का सही ज्ञान प्राप्त हुआ। हमारे देश में फैले हुए अंधविश्वास, कुरीति-रिवाज, आडम्बर, शोषण एवं सर्वत्र फैले हुए अंधकार आदि की जानकारी प्राप्त हुई। नवजागरण काल में इन दूषणों का न केवल विरोध हुआ बल्कि लोगों को सही और गलत का पता भी चला।

इसी तरह पुस्तकों के चयन से मुझे ज्ञात हुआ कि हिन्दी साहित्य में इसी दौरान गद्य विधा का प्रारंभ हुआ जिसके प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्दजी थे। हिन्दी साहित्य को पढ़ते-पढ़ते यह बात निश्चित हो गई कि 'मुंशी प्रेमचंद' एक ऐसे लेखक थे जिन्होंने अपने साहित्य में भारतीय समाज की कुरीतियों को

दर्शाया है। मैंने उनके उपन्यास और कुछ कहानियॉं पढ़ीं। जिसमें उन्होंने उस समय के प्रत्यक्ष भारत को प्रस्तुत किया था। मैंने उनकी कहानियों का चयन किया जिसमें मैंने कई प्रकार का वैविध्य पाया था। बस फिर क्या था? मैंने प्रेमचंद की कहानियों को 'नवजागरण' के आधार पर मेरे शोध का विषय बनाने का निश्चय किया। गुरुजनों के साथ वार्तालाप करने के बाद यह निश्चित किया गया कि मेरे शोध-प्रबन्ध का विषय **"नवजागरण काल के सन्दर्भ में प्रेमचन्द की कहानियॉं: एक अनुशीलन''** रहेगा। शोध प्रबन्ध का विषय निश्चित होने के बाद एक निर्धारित दिन डॉ. लता सुमन्त मेडम के मार्गदर्शन में मेरा रजिस्ट्रेशन हुआ।

पी.एच.डी. करने का संकल्प जब किया था तब इतना तो मुझे पता था कि यह एक बड़ा काम है, जिसमें संकल्प प्रतिबद्धता के साथ जुड़ना पड़ता है, परन्तु इस बात का ज्ञान नहीं था कि यह कार्य इतना श्रमसाध्य और समय साध्य होता है। परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि परिश्रम यज्ञ में सारस्वत आनंद की जो अनुभूति होती है वह वर्णनातीत होती है। इसका आनंद मुझे आज हो रहा है, जब मैंने अपना कार्य अपने शोध निर्देशिका डॉ. लता सुमन्त मेडम के मार्गदर्शन में पूर्ण किया। मेडम से मैंने शोधकार्य के अलावा कई महत्वपूर्ण तथ्यों का भी ज्ञान प्राप्त किया है। वे हमेशा मातृत्व के साथ मेरी समस्याओं का न केवल समाधान करती हैं बल्कि यथोचित सलाह भी देतीं हैं। उनकी उदारता, सरलता और शिष्यवत्सलता जैसे गुणों ने ही मुझे हमेशा आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। भारतीय संस्कार, पंरपरा के अनुसार गुरू को साक्षात् परब्रह्म स्वरूप माना जाता है। अत: सर्वप्रथम मैं अपने शोध परामर्शक गुरू लता सुमन्त मेडम के चरणों में श्रद्धासुमन अर्पित करती हूँ।

"ब्रह्मानंदं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सदगुरुं तं नमामि।।''

इसके अतिरिक्त इस शोधकार्य के अथाह समुद्र में जहॉं कई तूफ़ानों के सामने मेरी नाव डॉवा-डोल होने लगी, जहॉं मुझे सही दिशा का ज्ञान न था, ऐसे समय में एक दिवादांडी के स्वरूप में मुझे मेरे परमपूज्य गुरुदेव डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय सर का सहारा हमेशा मिलता रहा। उन्होंने इस ग्रन्थ के प्रत्येक सोपान पर तरह-तरह से मार्गदर्शन किया और निराशा तथा हताशा के समय में उत्साहवर्धन भी किया। उनका व्यक्तित्व सरल है, पर वे ज्ञान के भंडार हैं। उनके ही सान्निध्य में मेरी मुलाकात गुजराती विभाग के प्राध्यापक डॉ. भरत मेहता से हुई, जिसके विश्वास के बदौलत शोधकार्य के दौरान ही मेरी एक गुजराती पुस्तक 'प्रेमचंद नी वार्ताओ'' (जिसमें प्रेमचंद की कुछ कहानियों का अनुवाद है)

प्रकाशित हुई। साथ ही डॉ. भरत मेहता सर ने मेरे शोधकार्य में भी यथासंभव मदद की। डॉ. मायाप्राकाश पाण्डेय सर ने इस शोधकार्य के दौरान मुझे अपने असीम ज्ञान से बार-बार लाभान्वित किया, जिनकी मैं हमेशा कृतज्ञ रहूँगी। सर मेरे लिए हमेशा आदर्श थे, हैं और बने रहेंगे।

इसके अतिरिक्त हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्षा डॉ. शैलजा भरद्वाज मेडम, डॉ. शन्नो पाण्डेय मेडम तथा डॉ. कल्पना गवली मेडम से मैंने जीवन के कई पहलुओं को न केवल जाना बल्कि विपरीत परिस्थितयों में सामना करने का हौसला भी प्राप्त किया। शोधकार्य के दौरान मुझे युनिवर्सिटी से फेलोशिप प्राप्त हुई, जिससे मैं हिन्दी विभाग का एक हिस्सा बन गई, जिसके परिणाम स्वरूप मैंने शोधकार्य के अलावा विभाग के अन्य कई शैक्षणिक कार्यो को जाना। डॉ. शैलजा भारद्वाज मेडम ने मुझे एक गुरू और माता की तरह शैक्षणिक कार्यो की सही रूप से सीख देती रहीं। जिसके परिणाम स्वरूप मैं काफी परिपक्व भी हो गई। इसके अलावा विभाग के अन्य प्राध्यापकों डॉ. दक्षा मिस्त्री, डॉ. मनीषा ठक्कर, डॉ. अनीता शुक्ला, डॉ. ओ.पी. यादव, डॉ. एन.एस. परमार, डॉ. कनु निनामा, डॉ. जाड़ेजा का भी आभार व्यक्त करना चाहती हूँ जिसका प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग मुझे समय-समय पर मिलता रहा।

गुरुजनों के पश्चात मैं उन व्यक्तियों का आभार प्रकट करना चाहती हूँ जिनका ऋण जन्म-जन्मान्तर नहीं चुकाया जा सकता है वह हैं मेरे माता-पिता, जिसकी वजह से मैं आज यहाँ खड़ी हूँ, यह उनके परिश्रम का ही फल है। मेरे माता-पिता ने इस शोधकार्य के दौरान मुझे कई जिम्मेदारियों से मुक्त रखा और हर संभव सहायता भी की। आज अपने पिता के स्वप्न को पूर्ण करते हुए मैं अपार प्रसन्नता का अनुभव कर रही हूँ। मेरे माता-पिता के सहयोग से यह कार्य पूर्ण हो सका है इसके लिए मैं चरण स्पर्श करके उनका भी आभार प्रकट करती हूँ।

किसी ने सही ही कहा है कि जैसा संग वैसा रग। इस शोधकार्य के दौरान मैं कुछ ऐसे मित्रों के साथ थी जो दृढ़ निश्चय होकर पढ़ते थे, जिन्हें देखकर मैं भी अपनी पढ़ाई बड़े चाव से करती थी। वैसे वे लोग साहित्य के नहीं थे इसलिए शोधकार्य से संबंधित मदद एवं बारीकियों का ज्ञान उनसे नहीं मिल पाया। लेकिन इस कमी की पूर्ति 'कमलजीतसिंह सिन्धा ने पूरी की। कमल वैसे संस्कृत का शोध छात्र है लेकिन उसका संस्कृत के अलावा हिन्दी एवं अंग्रेजी पर भी प्रभुत्व है, उसने न केवल मेरे शोधकार्य में हो रही क्षति को दूर किया बल्कि मुझे समय-समय पर मार्गदर्शन भी दिया। शोधकार्य के अन्तिम चरण में जब मैं हिम्मत हार जाती तब वह मेरा हौसला बढ़ाता। उसने ही मुझे हिन्दी साहित्य के अलावा अन्य साहित्य एवं पुस्तकें पढ़ने का मार्गदर्शन दिया जिससे मैं अपने ज्ञान की वृद्धि

कर सकूँ। मैं कमल के इस सहयोग की हमेशा कृतज्ञ रहूंगी। इसके अलावा मैं अपने अन्य मित्रों स्नेहा, कविता, निमिषा, पुष्पा, एवं गौतम आदि की भी आभारी हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को यथाशक्ति यथामति दोषरहित रखने का प्रयास किया गया है। फिर भी यदि कोई क्षति दृष्टिपात होती है तो उसके लिए मैं स्वयं जिम्मेदार हूँ और पाठकों तथा विद्वानों और प्रेमचंदजी से अनुग्रह की अपेक्षा रखती हूँ।

अंत में उस परम कृपालु परमेश्वर की वंदना करती हूँ जिनकी कृपा से आज मैं अपना शोधकार्य सम्पन्न कर पाई हूँ - अस्तु

भवदीया

अमीषा विजयकुमार शाह